REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2018

पूर्व मध्यकालीन भारत की राजनीतिक विश्लेषण : एक अवलोकन (750—1200) ई0

मानसी कुमारी
एम० ए० (इतिहास), नालंदा खुला विश्वविद्यालय, पटना.

सारांश—

पूर्व मध्ययुग का राजतंत्रीय सीमांकन परिवर्तनशील था और जिनको परिभाषित करना कठिन है। राजतंत्रों के केवल नाभिकीय क्षेत्रों और राजनीतिक केंद्रों को चिन्हित किया जा सकता है, इनकी सीमाओं को नहीं। इन शताब्दियों के राजनीतिक आख्यानों से कुछ बड़े तथा अपेक्षाकृत दीर्घकालिक राजतंत्रों की जानकारी मिलती है, जिनमें चोल, राष्ट्रकूट, पालवंश तथा प्रतिहारों का नाम लिया जा सकता है। वैसे अल्पकालिक अस्तित्ववाले राजतंत्रो की संख्या कहीं अधिक थी, जिनका नियंत्रण छोटे—छोटे क्षेत्रों में सिमित था। विभिन्न राजघरानों के बीच का सम्बन्ध युद्ध और संघर्ष से लेकर सैन्यसंधि या वैवाहिक संधि का रूप ग्रहण कर लेता था। इन राजघरानों ने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में किस प्रकार राजनीतिक आधार तथा कृषि संसाधनों को विकसित किया, इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। दरअसल, राजनीतिक संरचनाओं के केंद्र में स्वशाखीय वंशजों का अस्तित्व था।

राजनीतिक कुलीन वर्ग की स्थानिक गतिशीलता और उच्चस्तरीय सामरिक शक्ति का निर्माण, राजकीय समाज के विस्तार के साथ—साथ विकसित होते चली गई। इस युग में होने वाले अहर्निश युद्धों से यह स्पष्ट होता है कि दमनात्मक शक्ति और समकालीन राजनीति से सामरिक शक्ति के महत्त्व का पता चलता है। केंद्रीय सैन्य संगठनों के साथ—साथ सम्राटों के झगड़े सैनिकों पर भी आश्रित थे। उदाहरण के लिए, बिहार और बंगाल से प्राप्त होने वाले पाल शासकों द्वारा निर्गत अभिलेखों में गौड़, मालव, खास कुलिक, हूण, कर्णाट तथा लाट के बहाल किए गए सैनिकों का भी उल्लेख है। राजतरंगिणी में भी कश्मीर के शासकों के द्वारा अन्य क्षेत्रों से बहाल किए गए भाड़े के सैनिकों का भी वर्णन मिलता है। स्थायी तथा भाड़े पर बहाल किए गए सैनिकों के अलावा समय की मांग के अनुसार, सहयोगी और अधीनस्थ शासकों से भी सैन्य सहायता ली जाती थी।

शब्दसंकेतः— भारतीय युद्ध संघर्ष, मध्यकालीन भारत, राजनीतिक विश्लेषण, त्रिपक्षीय संघर्ष

प्रस्तावनाः

राजकीय अभिलेखों की प्रशस्तियों से प्रचलित राजनीतिक पदानुक्रमों का अनुमान लगाया जा सकता है। अधीनस्थ शासकों के द्वारा निर्गत अभिलेखों में अक्सर उनके अधिपति शासकों का उल्लेख होता है और ठीक उसी प्रकार कई बार अधिपतिशासकों के द्वारा, अभिलेखों में अपने अधीनस्थ शासकों का जिक्र किया गया है। यद्यपि,

सामंतवादी प्राक्कल्पना को संपूर्ण रूप से विश्लेषित करने पर अनेक विवाद सामने आते हैं, फिर भी अधीनस्थ सामंतों को मोटे तौर पर वैसे अधीनस्थ शासकों के रूप में देख सकते हैं, जिन्हें अपने अधिपति के प्रति निष्ठापूर्ण समर्पण और आवश्यकता पड़ने पर सैन्य सहायता देनी पड़ती थी, किंतु आधिपत्य की इस श्रृंखला का भूमि अनुदानों से कोई भी सीधा सरोकार दिखलाई नहीं देता। सैनिक सहायता की एवज में पूर्व मध्यकालीन शासकों के द्वारा भूमि अनुदान निर्गत करने के कुछ प्रमाण अवश्य हैं, लेकिन निश्चित रूप से यह कोई प्रचलित प्रृत्ति नहीं कही जा सकती।

इस काल में जिस नवीन राजनीतिक कुलीन वर्ग का अभ्युदय हुआ था, उसका भूमिपति समूहों के साथ जबरदस्त सरोकार था। इनमें से एक बड़े भूमि पति वर्ग ने राजकीय भूमि अनुदानों से जन्म लिया था और उन्हीं के द्वारा वह पोषित भी हो रहा था।

यद्यपि, पूर्व मध्यकालीन समाज की प्रकृति पितृसत्तात्मक थी, लेकिन इस काल का भारतीय इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा है, जिसमें रानियों को राजगद्दी का उत्तराधिकार सौंपा गया है। दिद्दा, यशोवती और सुगंधा कश्मीर की तीन प्रसिद्ध रानियां हुई। चन्द्रादित्य की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी विजयामहादेवी को पूर्वी चालुक्यों के शासन की बागडोर दी गई।

पूर्व मध्यकालीन इतिहास की पुनर्रचना के समक्ष एक बड़ी समस्या यह है कि विभिन्न राजवंशों ने अपनी–अपनी राजनीतिक सफलता का अतिशयोक्तिपूर्ण दावा किया है और कई बार उनके प्रतिस्पर्द्धी राजवंशों ने इन दावों का पूर्ण रूप से खंडन भी किया है। फिर एक आधारभूत आख्यान की पुनर्रचना की जा सकती है (मजूमदार 1955, 1964; 1957, 1966)। यहां पर विस्तृत वर्णन करना अपेक्षित नहीं है, किंतु प्रस्तुत विमर्श के द्वारा हम एक संक्षिप्त रूपरेखा तैयार कर सकते है, जिसमें 600–1200 सा. स. के बीच के कुछ महत्त्वपूर्ण राजवंशों पर केंद्रित किया जा सकेगा।

पूर्वमध्यकालीन भारतः राजनीतिक स्थिति

छठी शताब्दी क अंतिम चरण में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ भारतीय इतिहास के एक महान् युग का अंत हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन के बड़े दूरगामी राजनीतिक परिणाम हुए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पिछले एक हजार से अधिक वर्षो तक मगध भारत का राजनीतिक गुरूत्वाकर्षण बिंदू रहा था, परंतु गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ ही मगध का वह महत्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया और अब उत्तर भारत की राजनीतिक शक्ति का केंद्र–बिंदु कन्नौज हो गया। सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में कन्नौज के राजसिंहासन पर हर्ष के राज्यरोहण के साथ कन्नौज के उत्कष की इस सीमा तक अभिवृद्धि हुई कि संपूर्ण अगली शताब्दी में भारत की तीन शक्तियों ने इस पर आधिपत्य स्थापना के लिए लगभग एक शताब्दी तक आपस में संघर्ष किया।

त्रिपक्षीय संघर्ष

आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में कन्नौज पर नितांत शक्तिहीन आयुध शासकों का शासन था। वे अपनी समकालीन पूर्वोक्त तीन महाशक्तियों की तुलना में इतने शक्तिहीन और अक्षम थे कि उनके सामने हर विजेता के सम्मुख नतमस्तक होने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था। इसके विपरीत पाल, प्रतीहार और राष्ट्रकूट उनकी शक्तिहीनता का लाभ उठाकर कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। कन्नौज पर आधिपत्य के लिए इन तीनों महाशक्तियों के मध्य संघर्ष को 'त्रिपक्षीय संघर्ष' कहा जाता है। यह संघर्ष बड़ी विचित्र एवं रोचक स्थितियों में लगभग एक शताब्दी तक चलता रहा और अंततः नवीं शताब्दी के प्रारंभ में गुर्जर–प्रतीहार कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुए।

इस त्रिपक्षीय संघर्ष का कारण कन्नौज नगर पर अधिकार करने की आकांक्षा मात्र नहीं था। कन्नौज वास्तव में इन तीनों महाशक्तियों की महत्वाकांक्षाओं का क्रीड़ा–स्थल था। जैसा कि हम पहले कह आए हैं, गुप्त–साम्राज्य के पतन के बाद कन्नौज का वही स्थान हो गया था जो मगध साम्राज्य के इतिहास में कभी पाटलिपुत्र का था। कन्नौज अब उत्तर भारत की राजनीतिक धुरी का प्रतीक था। अतः समकालीन राजनीतिक महाशक्तियों द्वारा कन्नौज पर प्रभुत्व स्थापित करने की लालसा बड़ी स्वाभाविक थी। इस काल में कन्नौज के आसपास के उत्तर भारत के क्षेत्र को मध्यदेश कहा जाता था।

कन्नौज के गुर्जर–प्रतीहार

हरिश्चंद्र और उनके उत्तराधिकारी तथा इस वंश के अन्य शासकों ने जोधपुर, नंदीपुर, भड़ौच, उज्जयिनी आदि में अनेक छोटे–छोटे राज्य स्थापित किए थे। हरिश्चंद की संतानों में उज्जयिनी के शासक नागभट्ट प्रथम (730–756 ई.) ने प्रतीहार राज्य का विस्तार किया था। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार नागभट्ट, अरबों की सिंध से आगे बढ़ने से रोकने में सफल रहा था, किन्तु राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग से इसे पराजय का सामना करना पड़ा। नागभट्ट के उत्तराधिकारी कक्कुक तथा देशराज के बाद वत्सराज (लगभग 778–805 ई0) महत्वाकांक्षी शासक हुआ। उसने राजस्थान का मध्य भाग और उत्तर भारत का पूर्वी भाग जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। कन्नौज पर अधिकार करने के प्रयास में उसने पाल वंश के धर्मपाल को हराया, किंतु वह राष्ट्रकू ध्रुव से हार गया। इसी के लड़के नागभट्ट द्वितीय (805–833 ई.) ने प्रतीहार वंश की शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बढ़ाया था। इसके पौत्र भोज के ग्वालियर अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि इसने आंध्र, सैंधव, विदर्भ तथा कलिंग के शासकों को पराजित किया था और आनर्त (उत्तरी गुजरात), मालवा, किरात, तुरूक्ष (तुर्क), वत्स तथा मत्स्य के राजाओं के पर्वतीय दुर्गो पर विजय प्राप्त की थी। इसी समय कन्नौज पर आधिपत्य के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष चल रहा था। नागभट्ट ने चक्रायुद्ध को हराकर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इसी कारण से उसका पालवंश के धर्मपाल से युद्ध हुआ। जोधपुर के प्रतीहार, दक्षिणी काठियावाड़ के चालुक्य तथा मेवाड़ के गुहिल शासकों की सहायता से उसने धर्मपाल को पराजित किया और उसे मुंगेर तक खदेड़ दिया। संभवतः चक्रायुध तथा धर्मपाल के आमंत्रण पर राष्ट्रकूट गोविंद तृतीय ने उत्तरी भारत का विजय अभियान शुरू किया और 809 या 910 ई. के आसपास नागभट्ट को पराजित किया। गोविंद तृतीय के दक्षिण लौट जाने पर धीरे–धीरे पाल वंश के धर्मपाल तथा वेदपाल ने उत्तर भारत में अपनी स्थिति मजबूत कर ली जब कि मालवा और गुजरात नागभट्ट के हाथ से निकल गए थे। फिर भी ग्वालियर, कालिंजर और कन्नौज पर अपना अधिकार बनाए रखने में वह सफल रहा।

गहड़वाल वंश

प्रतीहारों के बाद कन्नौज के वैभव तथा उसकी समृद्धि को गहड़वालों ने नया जीवन प्रदान किया। 1080–85 ई0 के बीच चंद्रदेव ने राष्ट्रकू शासक गोपाल को हराकर कन्नौज और लगभग संपूर्ण (आधुनिक) उत्तर प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित करके 1100 ई. तक शासन किया। उसके उत्तराधिकारी मदन चंद्र या मदन पाल के संबंध में विस्तृत जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। मदन चंद्र का पुत्र और उत्तराधिकारी गोविंद चंद्र (1114–1154 ई0) महत्वाकांक्षी तथा योग्य शासक था। उसने बंगाल के पालों से मगध को जीता था और मालवा पर भी अधिकार कर लिया। उसने उड़ीसा और कलिंग के शासकों से भी शक्ति–परीक्षण किया था तथा काश्मीर के शासक जयसिंह, गुजरात के जयसिंह सिद्धराज तथा दक्षिण के चोल शासकों से मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किए। इसने लाहौर के तुर्की हाकिम को हराकर आगे बढ़ने से रोका। युद्ध और कुटनीति दोनों में समर्थ गोविंद चंद्र ने एक बड़े साम्राज्य का निर्माण किया।

दिल्ली तथा अजमेर के चौहान

चौहान वंश की अनेक शाखाओं में से सातवीं शताब्दी में वासुदेव द्वारा स्थापित शाकंभरी (अजमेर के निकट) के चौहान राज्य का इतिहास में विशेष महत्व है। वासुदेव के बाद सामंत पूर्णतल्ल, जयराज, विग्रहराज प्रथम, चंद्रराज गोपराज आदि यहाँ अनेक शासक हुए। आठवीं शताब्दी के अंतिम चीन दशको में दुर्लभराज प्रथम प्रतीहारों का सामंत था। उसके उत्तराधिकारी गोविंदराज प्रथम ने नागभट्ट द्वितीय के काल में विशेष महत्व प्राप्त किया। उसके बाद चंद्रराज द्वितीय गुवक, (गोविंदराज) द्वितीय चंदन में कुछ समय तक शासन किया। दसवीं शताब्दी के प्रारंभ में वाक्पतिराज प्रथम ने प्रतीहारों से अपने को स्वतंत्र कर लिया। उसके लड़के सिद्धराज ने अपने राज्य का विस्तार करके महाराजाधिराज का विरूद्ध धारण किया। तत्पश्चात् इस वंश में विग्रहराज द्वितीय, दुर्लभराज द्वितीय, गोविंदरज तृतीय, विग्रहराज तृतीय, पृथ्वीराज प्रथम, अजयराज आदि शासक हुए।

बंगाल के पाल तथा सेन वंश

हर्ष के समकालीन शशांक के बाद पाल वंश के नेतृत्व में बंगाल की शक्ति संगठित हुई और देखते–देखते इसकी गणना उत्तरी भारत की प्रमुख शक्तियों में होने लगी। पाल वंश की स्थापना बौद्ध धर्म के अनुयायी गोपाल (750–770 ई0 लगभग) ने की थी। बंगाल के सामंतों ने बंगाल की राजनीतिक कलह तथा उथल–पुथल को समाप्त करने के लिए गोपाल की योग्यता से प्रभावित होकर उसे अपना शासक चुना था। इन सामंतों ने राज्य के हित के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान किया। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार गोपाल पुंड्रवर्धन (बोगरा जिला) के एक क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न हुआ था। उसने युद्ध द्वारा राज्य का विस्तार किया तथा राज्य को दृढ़ संगठन भी प्रदान किया।

सेन–वंश

पाल–वंश के बाद साम्राज्य–निर्माण द्वारा बंगाल की राजनीतिक नेतृत्व सेन–वंश ने प्रधान किया। एक सेन अभिलेख के अनुसार वे कर्नाट–क्षत्रिय या ब्रह्म–क्षत्रिय थे। सामंत सेन ने गढ़ में एक राज्य स्थापित किया। उसके लड़के हेमन्त सेन ने गढ़ में अपनी स्थिति मजबूत की और बंगाल पर कलचुरी कर्ण के आक्रमण के समय यह स्वतंत्र हो गया।

शाही–वंश

काबुल घाटी तथा गांधार प्रदेश में काफी अर्से से एक तुर्की शाही वंश का शासन स्थापित था। इस वंश के शासक लगर्तूमान को इसके ही एक ब्राह्मण जाति के मंत्री कल्लर ने गद्दी से हटा दिया और वह स्वयं शासक बन बैठा। इस प्रकार नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदू शाही–वंश की स्थापना हुई। इतिहासकारों को वह तथ्य अभी हाल ही में ज्ञात हुआ कि ''राजतरंगिणी' में लल्लिय शाही के रूप में कल्लर का ही उल्लेख हुआ है। लल्लिय का राज्य तुरूक्षों के क्षेत्र (काबुल घाटी) से दरदों के क्षेत्र (कश्मीर में किशन गंगा घाटी) तक विस्तृत था। ललिल्य पर काश्मीर के शासक शंकरवर्मन ने आक्रमण किया था, किंतु उसे विशेष सफलता नहीं मिली थी। कल्हण ने वीरता तथा वैभव के वर्णन के साथ ही एक उदार आश्रयदाता के रूप में राजा की बड़ी प्रशंसा की है। किन्तु काबुल पर लल्लिय का आधिपत्य अधिक समय तक नहीं रह सका। सन् 870 में शफारिद याकूब इब्न लाइथ का इस पर कब्जा हो गया। इसकी मृत्यु के बाद इसी वंश की अन्य शाखा के सामंत ने राज्य पर कब्जा कर लिया। किंतु शीघ्र ही काश्मीर के शासक गोपाल वर्मन ने सामंत को हटाकर लल्लिय के लड़के तोरमाण को गद्दी पर बैठाया और उसका नाम कमलुक रखा। जाबुलिस्तान क हाकिम फर्दरान ने एक हिंदू तीर्थ स्काबन्द (जलालाबाद के निकट) को लूटा जो कमलुक के राज्य में पड़ता था। इससे कमलुक तथा मुस्लिम शासकों में वैमन्स्य पनपने लगा था।

काश्मीर के राजवंश

आठवीं शताब्दी के मध्य काल में (लगभग 724–760 ई0) काश्मीर में ललितादित्य मुक्तापीड़ का शायन था। उसके नाम से यह संकेत मिलता है कि वह कार्कोट वंश के जनजातीय परिवेश में उत्पन्न हुआ था। ललितादित्य के समय काश्मीर की पर्याप्त राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रगति हुई। उसने एक ओर तो कन्नौज के यशोवर्मन को हराया और दूसरी ओर काबुल तक विजय प्राप्त करते हुए अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत किया। उसने बुद्धिमानी के साथ विदेशें से राजनीतिक संबंध स्थापित किए और चीन राज्य में अपना राजदूत भी भेजा। धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त उदार होने के कारण उसने बौद्ध विहार तथा हिंदू–मंदिर निर्मित कराए, जिनमें उसके द्वारा निर्मित मार्तंड (सूर्य) मंदिर बहुत प्रसिद्ध हुआ। ललितादित्य के दो लड़के थे कुवलयापीड तथा वज्रादित्य बप्पियक– जिन्होंने क्रमशः अल्पकाल तक शासन किया। संभवतः सिंध के अरब हाकिम हिशाम इब्न अम्र अतातागालेबि ने वज्रादित्य के काल में काश्मीर पर आक्रमण किया थ्ज्ञा और वह यहाँ से अनेक बंदी तथा दास पकड़कर ले गया था। उसके बाद जयापीड विनयादित्य (लगभग 770–810 ई0 तक) नामक महत्वपूर्ण शासक हुआ। उसने बंगाल, कन्नौज, मध्यदेश तथा संभवतः नेपाल पर लगातार सैनिक अभियान करके अपनी शक्ति का बड़ा विस्तार किया। यह राजा विद्वानो का बड़ा आदर करता था, तभी तो उसकी सभा को क्षीर, भट्ट, उद्भट्ट, दामोदर गुप्त आदि विद्वान लेखक सुशोभित करते थे। उसने अपने

राज्यकाल में साहित्य तथा कला को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। वह प्रसिद्ध निर्माता भी था। दुर्भाग्य की बात यह है कि उसके बाद उसके वंश में निर्बल शासक हुए और वंश का ह्रास प्रारंभ हो गया।

उत्पल वंश

काश्मीर में नवीं शताब्दी में उत्पन्न वंश प्रभुत्व में आ गया। इस वंश की स्थापना अवतिवर्मन ने की थी। राजा अवंतिवर्मन ने लोक–कल्याण के कार्यो में अपना जीवन अर्पित कर दिया। उसने कृषि के विकास के लिए नहरों का निर्माण कराया तथा अनेक नगरों की स्थापना का श्रेय भी प्राप्त किया। राजा के मन में ललित कलाओं के प्रति बड़ा आदर भाव था। इस भावना से उसने साहित्य तथा कला को भी काफी प्रोत्साहन दिया।

सिंध के शासक

सिंध में सातवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में शूद्र जाति के एक बौद्ध ने अपना शासन स्थापित किया था। किंतु राय शाहसी द्वितीय के काल मे उसके ही ब्राहमण मंत्री चच ने राज्य पर अधिकार कर लिया और वह स्वयं शासक बन बैठा। यह मंत्री चालीस वर्षो तक शासन करता रहा। चच के लड़के दाहिर के समय मे ईराक के हाकिम अलहज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में अरबों को सिंध पर आक्रमण के लिए भेजा। भारी संघर्ष के बाद अरबों ने 712 ई0 में सिंध पर विजय प्राप्त कर ली। यह सच है कि अरबों की सिंध–विजय का शेष भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु उनका युद्ध पड़ोस के भारतीय शासकों से समय–समय पर अवश्य होता रहा। इन युद्धों ने अरबों को भारत में राज्य–विस्तार करने में पर्याप्त अवरोध उत्पन्न किया। ऐसी स्थिति में महमूद गजनवी के आक्रमण के समय से यहाँ का इतिहास अधिक स्पष्ट हो जाता है।

गुजरात के चालुक्य

चालुक्य वंश की अनेक शाखाओं में से हमारे सर्वेक्षण काल के अंतर्गत गुजरात के चालुक्य वंश का उत्कर्ष विशेष महत्वपूर्ण है। इस वंश के मूलराज प्रथम (लगभग 942–995 ई0) ने गुजरात के बड़े भाग को जीतकर अन्हिलवाड़ को अपनी राजधानी बनाया। उसने प्रतीहारों से सौराष्ट्र तथा लक्ष (लाखा) से कच्छ प्रदेश जीत लिया था, किंतु यह कल्याणी के चालुक्य तैल द्वितीय परमार मुंज तथा त्रिपुरी के कलचुरी शासकों था चौहान विग्रहराज द्वितीय से पराजित हुआ था। फिर भी उसका राज्य उत्तर में सांचोर (जोधपुर) तथा पूर्व तथा दक्षिण की ओर साबरमती नदी तक विस्तृत था। वृद्धावस्था में उसने अपने लड़के चामुण्डराज को शासक बनाकर स्वयं सिंहासन का परित्याग कर दिया।

जेजाकभुक्ति के चंदेल

प्रारंभिक चंदेल शासक नन्नुक, वाक्पति, जयशक्ति (जिसके नाम पर बुंदेलखंड का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा), विजयशकित, राहिल और हर्ष कन्नौज के प्रतीहार सम्राटों के सामंत थे। इस वंश के अधिकांश अभिलेख बांदा जिले (उत्तर प्रदेश) के कालिंजर तथा मध्यप्रदेश मे स्थित खजुराहों, महोबा तथा अजयगढ़ में मिले हैं।

हर्ष (लगभग 900–925 ई0) के उत्तराधिकारी यशोवर्मन (925–50 ई0) के समय चंदेल राज्य ने पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली थी। उसने (संभवतः राष्ट्रकूटों से) कांलिंजर विजय करके अपने राज्य की सीमा यमुना तथा गंगा तक बढ़ा ली। दक्षिण में यशोवर्मन ने त्रिपुरी के कलचुरी युवराज प्रथम तथा परमार सिख्यक द्वितीय को हराकर अपने को चेदि तथा मालवा तक विस्तृत कर लिया। उसने दक्षिण कोसल के सोमवंशी शासकों को भी हराया और गौड़ (बंगाल) तथा मिथिला पर भी विजय प्राप्त की थी। खजुराहो अभिलेख के अनुसार उसने खुश (काश्मीर में लोहर राज्य) तथा काश्मीरी योद्धाओं से भी टक्कर ली थी। अभिलेख में उसे कुरु प्रदेश (जो प्रतिहारों के अधीन था) के लिए झंझावत और गुर्जरों के लिए अग्नि के समान कहा गया हैं। किंतु इस राजा की इतनी अधिक प्रशंसा ठीक नहीं है क्योंकि इस राजा ने नाममात्र के लिए ही सही प्रतीहार शासक देवपाल की अधीनता स्वीकार की थी। यशोवर्मन को विष्णु की एक मूर्ति प्राप्त हुई थी जिसकी स्थापना के लिए उसने एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया था जिसे खजुराहों का वर्तमान चतुर्भुज मंदिन माना जाता है। ऐसी स्थिति में खजुराहो अभिलेख में दिए गए विजय श्रेय में प्रशंसातिरेक के बावजूद चंदेल की शक्ति की अभिवृद्धि का आभास अवश्य होता है।

घंगदेव (950–1007 ई0)

घंगदेव अपने वंश का बहुत प्रसिद्ध शासक था। कालांतर में वह कन्नौज के प्रतीहारों की अधीनता से भी मुक्त हो गया था। 'महाराजधिराज विरूद्ध से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। घंग अपने पिता यशोवर्मन की ही भाँति महत्वाकांक्षी, पराक्रमी तथा वीर योद्धा था।

मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि गंडदेव के पिता (घंग) ने कन्नौज के प्रतीहार नरेश को पराजित किया था। नन्योर अभिलेख के अनुसार उसने वाराणसी में ग्राम दान किए थे जो पहले प्रतीहार राज्य में थे। किंतु घंग के प्रसिद्ध खजुराहा अभिलेख में क्रथ (बरार के निकट) सिंघल (लंका) तथा कांची के नरेशों को उसके द्वारा पराजित करने का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। यह सच है कि कोसल के सोमवंशी नरेशों को उसने पराजित किया। आंध्र के चालुक्यो के साथ भी उसका भयंकर युद्ध हुा। उसने राढ़ (पश्चिमी बंगाल) तथा अंग (भागलपुर जिला) पर सफल आक्रमण किए। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि पहले ये क्षेत्र बंगाल के पालो के अधीन थे।

गंडदेव (1002–1019 ई0)

शाही वंश के आनंदपाल की सहायता के लिए महमूद गजनवी के विरूद्ध कालिंजर के शासक ने 1008 ई0 मे सेना भेजी थी। यह घंग के उत्तराधिकारी गंडदेव का काल है। उसने अपने लड़के विद्याधर को महमूद के आक्रमण के समय (1019 ई0) प्रतीहार शासक राज्यपाल को (कायरता से भाग जाने के कारण) दंडित करने भेजा था। राज्यपाल की हत्या करने के बाद विद्याधर ने उसके लड़के त्रिलोचनपाल को कन्नौज का शासक बना दिया।

चंदेल शासकों के इस कार्य के कारण 1019 ई0 तथा पुनः 1022 ई0 में महमूद ने चंदेलों पर आक्रमण किया। निजामुद्दीन गर्दजी तथा फरिश्ता के अनुसार विद्याधर ने महमूद से युद्ध नहीं किया था किंतु ताजुल मआसिर से ज्ञात होता है कि एक दिन युद्ध करने के बाद विद्याधर युद्ध क्षेत्र से भाग गया था। इसके बाद 1022 ई0 में महमूद के आक्रमण करने पर विद्याधर ने उससे शांति–समझौता कर लिया और दोनों ने एक–दूसरे को उपहार दिए। चंदेल शासक ने महमूद को तीन सौ हाथी भी दिए थे। विद्याधर के बाद विजयपाल (1030–1050 ई0) देववर्मन (1050–60 ई0), कीर्तिवर्मन (1060–1100 ई0) सल्लक्षणवर्मन (1100–1115 ई0.) जयवर्मन तथा पृथ्वीवर्मन आदि इस वंश के शासक हुए थे। किंतु भारतीय इतिहास में इनकी कोई विशेष उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं है।

मालवा के परमार

परमार वंश के प्रारंभिक शासक उपेंद्र, वैरिसिंह प्रथम, सियम प्रथम, वाक्पति प्रथम तथा वैरिसिंह द्वितीय के संबंध में विशेष जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों पर गहराई से ध्यान केंद्रित करते ही ज्ञात होता है कि ये संभवतः राष्ट्रकूटों की अधीनता स्वीकार करते थे।

सियक द्वितीय ने सौराष्ट्र के चालुक्यों तथा मालवा के उत्तर–पश्चिम मे स्थित हूणों को भी पराजित किया था। नवसाहसांकचरित के अनुसार उसने हूण स्त्रियों को विधवा कर दिया था। साथ ही उसे चंदेल यशोवर्मन के आक्रमण का सामना करना पड़ा। 968 ई0 में राष्ट्रकूट खोटिख को हराकर मान्यखेट को उसने जमकर लूटा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि परमार राज्य की स्वतंत्रता बनाए रखने में यह सफल रहा।

मुंज (973–995 ई0)

प्रसिद्ध रचना प्रबंधचिंतामणि के अनुसार मुंज सियक का दत्तक पुत्र था। मुंज एक साहसी योद्धा, पराक्रमी विजेता तथा कुशल प्रशासक था।

कौथेम दानपत्र से ज्ञात होता है कि मुंज ने हूणों को हराया था। इतना ही नहीं उसने मेवाड़ के गुहिल वंश के शासक शक्तिकुमार को हराकर उसके कुछ प्रदेश परमार राज्य में सम्मिलित कर लिए थे (997 ई0 का हस्तिकुंड अभिलेख)। उदयपुर अभिलेख के अनुसार मुंज ने कलचुरी वंश के युवराज द्वितीय को हराकर उसकी राजधानी त्रिपुरी का भी अधिकार किया था। उत्पल राज (मुंज) ने (कौथेम अभिलेख) नाडोल के चौहान बलिराज पर आक्रमण किया तथा उसने आबू पर्वत के क्षेत्र पर अधिकार स्थापित कर लिया। ऐसा साक्ष्य भी

मिलता है कि मुंज ने गुजरात के चालुक्य मूलराज प्रथम को भी पराजित किया था। इन सफलताओं के साथ ही उसने लाट प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की थी।

कल्याणी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय को मुंज ने छह बार पराजित किया, किंतु सातवीं बार युद्ध में बंदी बना लिया गया और उसे अपमानित करक उसकी हत्या कर दी गई। इस घटना का विस्तृत उल्लेख अभिलेखों और अबुल फजल के आइन–ए–अकबरी में भी मिलता है। मुंज अत्यंत पराक्रमी, कुशल प्रशासक तथा विद्या प्रेमी शासक था। उसके काल में परमार राज्य की सभी क्षेत्रो में उन्नति हुई थी और उसका काल परमारों के लिए गौरवशाली युग था। वह कवियो तथा विद्वानां का आश्रयदाता था। उसकी राजसभा में नवसाहसांकचरित का लेखक पद्मगुप्त, दशरूपक का लेखक धनंजय, यशोरुपावलोक के रचयिता धनिक जैसे कवि–कलाकार मौजूद थे। वह स्थापत्य–कला का प्रेमी तथा निर्माता भी था।

कलचुरी

कलचुरियों का एक वंश सरयूपार (गोरखपुर) में भी था किंतु चेद (जिसका प्राचीन नाम डाहलमंडल भी था) या त्रिपुरी (जबलपुर) से लगभग दस किलोमीटर पश्चिम के कलचुरी वंश ने इस काल के इतिहास को विशेष रूप से प्रभावित किया।

अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट गोविंद तृतीय ने डाहल–प्रदेश को जीतकर लक्ष्मणराज को यहाँ का प्रांतीय शासक बनाया था। कोकल्ल प्रथम ने यहाँ (लगभग 845 ई0 मे) कलचुरी वश का राज्य स्थापित किया। उसकी गणना अपने समय के महानतम सेनानायकों में होती है। उन्होंने प्रतीहार शासक भोज प्रथम तथा सरयूपार के कलचुरी शंकरगण, मेवाड़ के गुहिल वंश के हर्षराज शाकंभरी के चौहान गूवह द्वितीय (ये सभी भोज प्रतीहार के ही सामंत थे) को पराजित करके उनके कोष का अपहरण कर लिया। उन्होंने तुर्को (सिंध के अरबो की सेना) को भी पराजित किया था। इन्होंने बंग (पूर्वी बंगाल) तक सैनिक अभियान करके वहाँ पर धन की लूट की थी। राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय को भी उन्होंने हराया और कोंकण के शासक पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्होंने अपनी वीरता से राज्य का विस्तार तो किया ही, साथ ही अपनी सैनिक श्रेष्ठता से कलचुरी राज्य का विस्तार तो किया ही, साथ ही अपनी सैनिक श्रेष्ठता से कलचुरी राज्य की महत्ता–विशेषकर उत्तरी भारत की राजनीति में स्थापित कर दी। दूरदर्शिता के कारण उन्होंने चंदेल तथा राष्ट्रकूट वंशों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए।

दक्षिण भारतः ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के मध्य (चोल–चालुक्य युग)

दसवीं शताब्दी का अंतिम चरण दक्षिण भारत के इतिहास में राजनीतिक दृष्टि से संक्रमण काल था। पहले से सत्तारूढ़ शक्तियों का पतन हो रहा था और उनका स्थान नवीन उदीयमान शक्तियाँ ले रही थी। उत्तर में अंतिम राष्ट्रकूट नरेश दक्कन द्वितीय को पुराने चालुक्य वंश से संबंधित लैलप द्वितीय ने अपदस्थ करके 973 ई. में कल्याणी के चालुक्य वंश की स्थापना की। तैलप द्वितीय द्वारा स्थापित चालुक्य साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में कृष्णा से लेकर दक्षिण में वेंगी के चालुक्य साम्राज्य तक फैली हुई थी। आधुनिक आंध्र में स्थित वेगी के पूर्वी चालुक्यों का राज्य भयंकर अव्यवस्था से ग्रस्त था। 973 से 999 ई0 तक आंतरिक कलह और अराजकता के कारण वेंगी का राजसिंहासन लगभग रिक्त रहा। अंततः राजराज के हस्तक्षेप से यह अव्यवस्था समाप्त हुई। सुदूर दक्षिण में पल्लवों का नवीं शताब्दी में बड़ी तीव्र गति से पतन हुआ और नवीं शताब्दी के अंत तक उनकी नाममात्र की शक्ति शेष रह गई। पल्लवों का स्थान शीघ्र ही चोलों ने ले लिया। इसी प्रकार पांड्य भी, जो उत्तर में वेललारु नदी से दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ था, चोलों के साम्राज्यवादी प्रवाह में आत्मसात हो गया और चोलों के पतन तक पांड्य केवल इतिहास में अपने अस्तित्व क रक्षा मात्र कर पाए। पश्चिमी समुद्र तट पर चेरों की शक्ति भी इस काल में बहुत कमजोर हो गई थी। चेर (केरल) और चोलमंडलम के मध्य में स्थित कर्नाटक के गांगो की शक्ति पतनोन्मुख थी। चोलो ने पल्लव प्रदेशों को विजित करके 1000 ई0 में कर्नाटक के गांग प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार दसवीं शताब्दी के अंत में दक्षिण भारत में दो महाशक्तियों का उदय हुआ– (1) कल्याणी के चालुक्य (2) तंजवुर के चोल।

निष्कर्ष

इस काल के प्रमुख राजवंशों की उत्पत्ति से संबंधित अनेक ऐतिहासिक साक्ष्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है, किंतु यहाँ पर आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित मतों का विवेचन ही समीचीन लगता है। ऐसा करने का प्रधान कारण तो यही है कि प्रमुख विदेशी इतिहासकारों द्वारा राजपूतों के विदेशी जातियों से उत्पन्न होने के मतों का परीक्षण हम ऊपर कर चुके हैं। दशरथ शर्मा, विश्वंभर शरण पाठक आदि अनेक विद्वानों ने कई राजपूत वंशों की उत्पत्ति ब्राह्मण जाति से मानी है। अभिलेखों के अनुसार भंडोर के प्रतीहार ब्राह्मण हरिश्चंद्र की क्षत्रिय वंशजा पत्नी भद्रा के वंशज थे। परमार आबु पर्वत के वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण तथा चौहान (चाहमान) वत्स गोत्र के ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। चंदेलों की उत्पत्ति से संबंधित मिथक में उन्हें काशी के राजा पुरोहित चंद्रोत्रेय की लड़की से उत्पन्न बताया गया है। अनेक विद्वान ऐसा मानते रहे है कि गुहिल जैसे, जिसके संस्थापक बप्पा रावल नागर ब्राह्मण थे, प्रसिद्ध वंश में महाराणा प्रताप का जन्म हुआ था। परवर्ती विद्वानों ने मेवाड़ के इस प्रसिद्ध वंश को भी भगवान रामचंद्र के वंश से संबंधित करके उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रियों से संबंधित करने का जोरदार प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजपूतों की उत्पति का प्रश्न एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है। राजपूत वंशों की उत्पत्ति विदेशी ब्राह्मणों, जन–जातियों या वैदिक क्षत्रियों से होना सर्वथा स्वाभाविक है। स सामाजिक प्रक्रिया को कर्म के अनुरूप जात्युपकर्ष तथा जात्यपकर्ष का सैद्धांतिक आधार प्राप्त था। साथ ही इस प्रक्रिया में व्यापक आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों से उद्भूत मध्ययुगीन चेतना की ऐतिहासिक अनिवार्यता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अहमद अजीज : स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन द इंडियन इनवॉयमेंट
2. अहमद, एम. बी. द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ जस्टिस इन मेडिभल इंडिया
3. अल बीरूनी किताबुल इंग्लिश ट्रांसलेशन बॉय ई. सी. साचु
4. अलतेकर, ऐ. एस. द राष्ट्रकुतास एण्ड देयर टॉइम्स
5. अपाडोराही, ऐ. इकोनॉमी कंडीशन इन साउथ इंडिया (ऐ. डी. 1000–1500)2 Vols
6. हबीभुल्लाह, ए. बी. एम. द फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया
7. हृदय पी. हिस्ट्रोरियन्स चह मेडिभल इंडिया
8. हेवेल ई.बी. (1) ऐनसिऐंट एण्ड मेडिभल आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया
   (2) इंडियन स्कल्पचर एण्ड प्रिंटिंग
9. हिरास, एच.साउथ इंडिया अंडर द विजयनगर इम्पायर, वाल्यूम. 1 एण्ड 2
10. हुसैन महदी (1) रॉइस एण्ड फॉल ऑफ मुहम्मद बिन तुगलक
    (2) द तुगलक डॉयनास्टी
11. आई बी एन बटुटा द रिहला (ट्रांसलेटेड बाय मेहदी हुसैन)
12. इकराम, एम.एम. एण्ड हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम सिविलाईजेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान रसिद, एस. ऐ.